विचारों का साझा मंच

इंडिया इनसाइड

राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका

वर्ष 18, अंक 05, सितम्बर 2020
आमन्त्रण मूल्य 25 रुपये

www.indiainside.org

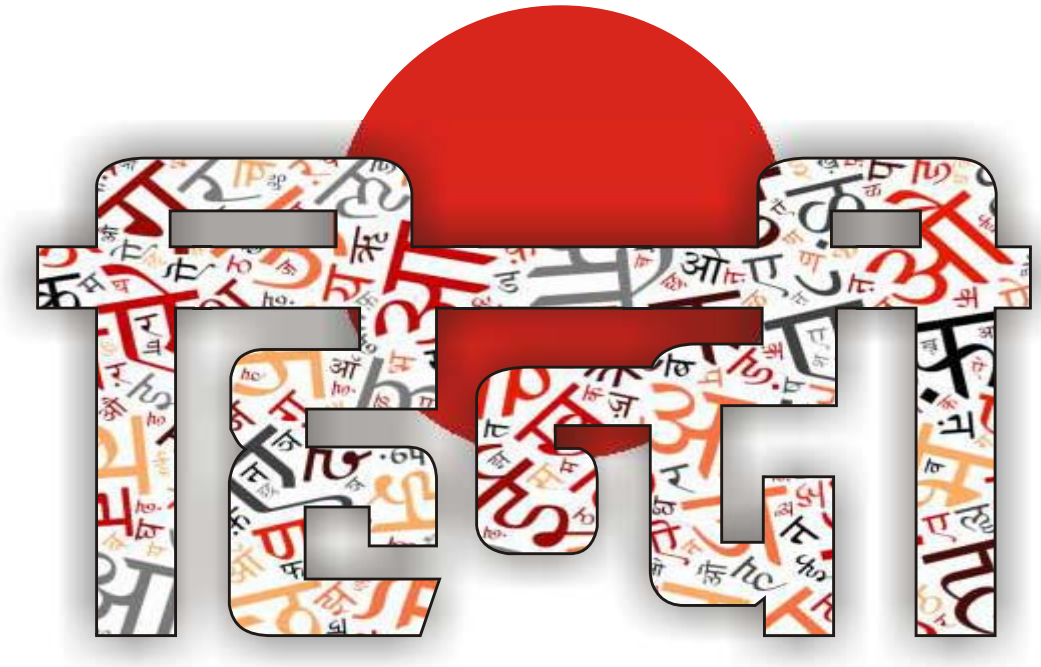

हिन्दी हैं हम

इस अंक में :

● हिन्दी क्या है? ● भाषा पर स्फुट बातें ● हिन्दी और पुरुषोत्तमदास टण्डन ● भाषा का सवाल और उसकी चर्चा
● ऐसे तो हो चुका हिन्दी का कल्याण ● सरकारी प्रतिष्ठानों की भूमिका ● जहाँ भाषाई व्यवस्था है एक मॉडल ● हिन्दी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप ● स्वर्ग का संकट और त्रासदी ● तीन-तलाक का नया चोर दरवाजा ● मगर ये जो नींद है...
● चित्रकला और विचारों का उदात्त स्वरूप
साथ में उपन्यास-अंश और किताबों पर चर्चाएँ

इस अंक में

इंडिया इनसाइड
राष्ट्रीय हिन्दी मासिक पत्रिका

सम्पादक
अरुण सिंह

आर्ट एडिटर
रामबाबू

मुख्य ब्यूरो
अनिल द्विवेदी

निदेशक
ऋचा सिंह
सम्पादकीय कार्यालय :
एल-1/88, सेक्टर-बी,अलीगंज विस्तार, लखनऊ, उत्तर प्रदेश-24
मुख्य प्रशासनिक कार्यालय:
बी-1, सुशील कॉम्पलेक्स,
गोखले मार्ग, हजरतगंज,
लखनऊ-226001
फोनः 0522-4106336
मो.-9450196408
9473583335
ईमेल :
editor.indiainside@gmail.com
gmindiainside@gmail.com

स्वामी, मुद्रक एवं प्रकाशक अरुण सिंह द्वारा नीलम प्रिंटिंग प्रेस 41/381 नरही, हजरतगंज, लखनऊ से मुद्रित कराकर 324, तृतीय तल प्रिंय कॉम्लेक्स, हजरतगंज, लखनऊ (उ.प्र.) से प्रकाशित,

लीडिंग मासमीडिया

इस अंक में व्यक्त-विचार लेखकों के अपने निजी मन्तव्य हैं।

पाठकों के विचार आमन्त्रित हैं

हमारे पाठक भी गहरे विचारों से भरे हैं। पत्रिका में प्रकाशित लेखकों के विचारों पर पाठकों के सारगर्भित-विचारों का सदैव स्वागत है। पत्र यथा सम्भव छोटे हों। पत्र 'पाठकों के पत्र' टैग से मेल करें या सम्पादकीय पते पर पत्र भेजें। पाठक चाहें तो पत्र के साथ अपना मोबाइल नम्बर व ई मेल भी दे सकते हैं।

समस्त विवादों का न्यायिक-क्षेत्र लखनऊ होगा।

हिन्दी-चर्चा

हिन्दी क्या है? / डॉ. राम मनोहर लोहिया..... 06
भाषा पर स्फुट बातें / के. विक्रम राव..... 08
हिन्दी और पुरुषोत्तमदास टण्डन / राज खन्ना..... 15
भाषा का सवाल और उसकी चर्चा / रमाशंकर सिंह..... 18
ऐसे तो हो चुका हिन्दी का कल्याण / प्रेमपाल शर्मा 22
सरकारी प्रतिष्ठानों की भूमिका/ सन्तोष अलेक्स 28
भाषाई व्यवस्था है एक मॉडल / जमुना बीनी 30
हिन्दी पत्रकारिता का बदलता स्वरूप / निरंकार सिंह 34

काश्मीर

स्वर्ग का संकट और त्रासदी / अशोक चन्द्र 36

समाज

तीन-तलाक का नया चोर दरवाजा / नाइश हसन.....42

जीवनशैली

मगर ये जो नींद है..../ डॉ. स्कन्द शुक्ल..... 45

साहित्य

थोड़ा-सा खुला आसमान / डॉ. रामकठिन सिंह..... 48

कला

चित्रकला और विचारों का उदात्त स्वरूप / अशोक भौमिक 54

किताबें

सुभाष चन्द्र कुशवाहा, उमेश पन्त, ज्योतिष जोशी की किताबों पर 56

कार्टून कोना **रामबाबू**

अपनी बात

अरुण सिंह, सम्पादक

लो ! आ गया चौदह सितम्बर.....

हिन्दी....बहुत बार तो याद ही नहीं रहता कि हिन्दी है हमारी भाषा। यह वैसे ही है जैसे कि हमारी साँसें हैं। हमारी रगों में दौड़ता लोहू। लेकिन यह तब जरूर याद आता है जब कभी साँसें टूटने लगती हैं। बहुत बार सोचता हूँ ऐ हिन्दी! तुझ पर दु:ख-शोक जताऊँ या अभिमान करूँ! नहीं, दोनों। दु:ख और अभिमान दोनों।

अतीत की एक लम्बी लड़ाई से हिन्दी यहाँ पहुँची है; कई आक्रान्ताओं के चंगुल से बचती-बचाती। यहाँ, संस्कृत के बाद हिन्दी पर तमाम हमले हुए- फ़ारसी के हमले, उर्दू के हमले और अब अँगरेजी। संस्कृत तो सहोदर या मातृरूपा रही, लश्करी यानी उर्दू भी सहोदरी जैसे ही है। लेकिन फ़ारसी और अँग्रेज़ी?

चलिए, फ़ारसी भी बहुत समय तक नहीं टिक पायी। लेकिन बरतानिया से आयी अँगरेजी?

अँग्रेजों से लड़ाई के साथ ही हिन्दी को भी बिन्दी की तरह सजाने के लिए लड़ाई शुरू हो गयी थी। हालाँकि अँग्रेज़ी के सामने टिकने में इसे थोड़ी दिक्कत जरूर हो रही है। लेकिन शुकराना जताया जाना चाहिए 'धन्धेबाज़ों' का, कि हिन्दी को विस्तार मिलने लगा है।

इसमें सन्देह नहीं कि आज हिन्दी विश्व-भाषा का रूप लेती दिख रही है। परन्तु आश्चर्य है कि इसकी वजह अकेले हिन्दी वाले नहीं हैं, बल्कि वह 'निर्दयी' बाज़ार भी है, जिसे हम कोसते रहते हैं। पूँजीवादी व्यवस्था में उस हर जगह पर निगाह रखी जाती है जहाँ उसे मुनाफे की सम्भावनाएँ दिखती हैं। हिन्दी इस बाज़ार की बढ़त में सहायक हो साबित हुई तो इसमें बाजार की दिलचस्पी भी बढ़ी। आज भारतीय ग्राहकों पर विश्व बाजार की नजर है। यह इनकी भाषा पढ़ चुका है। इसलिए वह दो लाइन के जिंगल या कॉपी (विज्ञापन की लाइन) पर लाखों खर्चता है, उस एक लाइन से करोड़ों का मुनाफा कमा लेता है। 'दाग अच्छे हैं', 'ढूँढते रह जाओगे', 'रोज़ी मिस का डागी', 'अमूल दूध पीता है इंडिया', 'कोमल स्पर्श का गुदगुदा एहसास', 'निरमा साबुन निरमा', 'अन्दर तक जाये, कमर दर्द में राहत पहुँचाये', 'आह से आहा तक', 'बुलन्द भारत की बुलन्द तस्वीर' और 'पहले इस्तेमाल करें फिर विश्वास करें' आदि जैसे विज्ञापन भले ही झूठ के पुलिन्दे हों, लेकिन अपनी भाषा और

प्रस्तुति से हिन्दी के करोड़ों उपभोक्ताओं को लुभाते हैं। इसी तरह से बम्बइया फिल्मों ने भी इसे सीमा पार तक पहुँचाने में बहुत बड़ी भूमिका निभायी है। देश के उन हिस्सों में, जहाँ हम सोच भी नहीं सकते, हिन्दी की पतली परत ही सही, पहुँच रही है। पूर्वोत्तर राज्य और सुदूर दक्षिण के प्रान्त इसके बेहतर उदाहरण हैं। यहाँ हिन्दी स्थानीय बोली के साथ घुल-मिल रही है। वह मानक हिन्दी भले न हो, पर वहाँ की स्थानीय भाषा-बानी के साथ जुगलबन्दी करने लगी है। मैंने अपनी यूरोप की यात्राओं में पाया कि यूरोप के कई देशों के लोग हम भारतीयों के साथ मिलकर बहुत प्यार से और बहुत ही नफ़ीस हिन्दी बोलते हैं, हिन्दी के गानों को गुनगुनाते हैं। और तो और; हमारे त्यौहारों पर हमें हिन्दी में ही शुभकामनाएँ भेजने की कोशिश करते हैं। यह कम सुखद नहीं है।

दरअसल ज़्यादातर भारतीयों के साथ दिक्कत यह है कि हम बहुत आत्मकेन्द्रित हैं। यह चरित्र हमारे जीवन के सभी पहलुओं को प्रभावित करता है। हम या तो उतना करते हैं जितना कि कम से कम में हमारा काम चल जाय या फिर इतना कर डालते हैं कि अपच हो जाय अथवा वह व्याधिरूप ले ले।

यह वृत्ति हमारी भाषा के प्रति व्यवहार पर भी लागू होती है। भाषा को लेकर हम बेहद उदासीन हैं। अँग्रेज़ी तो हम इसलिए सीखते हैं कि उससे हमारी रोटी का इंतज़ाम हो सकता है और अपनी मूल भाषा इसलिए कि उसी में पैदा होकर पले-बढ़े हैं। इसके अतिरिक्त तीसरी भाषा पर तो हमारा ध्यान भी नहीं जाता। कुल मिलाकर यह कि हम भाषा को लेकर बहुत ही निस्पृह किस्म के हैं। यदि हममें से किसी का ध्यान जाता भी है, तो वह संख्या न्यून है। हम अपने बच्चों को भी अन्य भाषाएँ सीखने के लिए अभिप्रेरित नहीं करते। यह तो छोड़ ही दीजिए, उन्हें सही-सही हिन्दी बोलने-लिखने और उच्चारण के लिए भी नहीं टोकते।

हमारी शिक्षा-व्यवस्था में भाषा सीखने-सिखाने का व्यावहारिक पक्ष निहायत कमजोर और घटिया है, कहिए कि है ही नहीं। हम या तो तोलती बोली पर पहले तो आनन्द लेते हैं और बाद में मज़े लेने लगते हैं।

बड़ी विचित्र बात है कि हमारे दैनन्दिन में शुद्ध उच्चारण को लेकर भी कोई आग्रह है ही नहीं। हम तो बोलते समय 'सादी' और 'शादी' का भेद ही भूल जाते है। इतना ही नहीं, 'जनता' को तो हम 'जन्ता' ही कहेंगे, चाहे जो हो जाय। ऐसी कितनी चूकें हैं, कितने अनयी हैं हम अपनी भाषा के साथ। कहने में संकोच नहीं कि हमसे बेहतर तो मराठी-भाषियों का भाषा-बोध है। दक्षिण वाले भी अपनी भाषा के व्यवहार को अच्छा रखते हैं। उनका उच्चारण और वर्त्तनी निर्दोष होते हैं।

मैंने यूरोप और पूर्वी एशिया के मित्रों से जाना है कि वहाँ के लोग कम से कम तीन भाषाएँ अवश्य जानते-बोलते और व्यवहृत करते हैं। मसलन, मलयेशियाई। वे एक तो मलय या बहासा बोलते हैं, दूसरे अपनी स्थानीय भाषा नित्य प्रयोग करते हैं और तीसरी चीनी/ जापानी तथा चौथी अँग्रेज़ी और हम... ?

दूसरी ओर, जरा अपनी हालत देखिए। जब भी किसी से कोई आवेदन या पत्र आदि लिखने को कहें तो उसकी पहली प्राथमिकता अँग्रेजी होती है। बजाय अपनी मातृभाषा या हिन्दी के, दूसरे वह अँग्रेजी लिखकर भी शरमाते हुए कहेगा, ''मेरी अँग्रेजी अच्छी नहीं।'' या हिन्दी में यदि लिख भी देता है तो वह बहुत ज़ोर देकर कहेगा कि उसकी 'हिन्दी' अच्छी नहीं है, मानो वह दूसरी भाषाओं-अँगरेजी- में पारंगत हो। कितनी विचित्र दशा है कि एक वर्ग को हिन्दी नहीं आती, दूसरे वर्ग की अंग्रेज़ी अच्छी नहीं है। फिर भी लिखेंगे अंग्रेज़ी में ही।

जब-जब हिन्दी की पत्र-पत्रिकाएँ बन्द होती हैं, लोगों का रोना-रँम्भना शुरू हो जाता है। हो सकता है कि इसमें कुछ लोगों की चिन्ता हृदयगत हो, परन्तु बहुतों का यह सतही विलाप ही लगता है।

देखिए जरा! जिस भाषा को लगभग पैतालिस करोड़ लोग बोलते-समझते हों, उस भाषा की दशा अभी भी दयनीय हो, यह तो बहुत ही सोचनीय है।

हिन्दी के प्रकाशनों पर कुछ बातें। इतनी बड़ी हिन्दी-आबादी का हिस्सा होने के बाद भी हिन्दी की किताबें तीन सौ-चार सौ छप रही हैं या अधिकतम हजार-दो हजार। यह कड़वी सच्चाई है। लेखक आरोप लगाते हैं कि प्रकाशक कम बताते हैं, क्योंकि उनको रॉयल्टी देनी पड़ती है। प्रकाशक कहते हैं कि किताबें बिकती ही नहीं, लेकिन एक तीसरी सच्चाई है कि प्रकाशक घनपति हैं।

यह सच है कि किताबें नहीं बिक रहीं। यदि प्रकाशक मर-मर कर सरकारी ख़रीद न करायें तो उसका मरना भी तय ही है। इसलिए इस पर विचार करना होगा कि इस आसन्न संकट से कैसे बचा जाय। यह बचने का उपक्रम भी हमारी हिन्दी को विस्तार देगा-लेखक और प्रकाशक दोनों बचेंगे; हिन्दी तो समृद्ध होगी ही।

दरअसल, पठन-पाठन हमारी संस्कृति से जुड़ा है, जीवनशैली का अंग है, लेकिन निराश हुए बिना इसे और भी गति देने की आवश्यकता है। फिलहाल, नयी दुनिया में हिन्दी से हिन्दी को उम्मीद करनी चाहिए।

अब ऑन लाइन कई ऐसे संसाधन या औजार विकसित हो रहे हैं जो हिन्दी के विस्तार को गतिशीलता देंगे, लेकिन उनका मानकीकरण तो हम हमें ही करना होगा। आज के कई सर्च इंजन जैसे गूगल ट्रांसलेशन, ट्रांसलिटरेशन, फनैटिक टूल्स आदि के क्षेत्र में नये-नये शोध करके अपनी सेवाओं का विस्तार कर उपयोगी बना रहे हैं। हिन्दी और संस्कृत समेत अन्य भारतीय भाषाओं की पुस्तकों का डिजिटल संस्करण उपलब्ध करा रहे हैं। फेसबुक और व्हाट्स एप पर हिन्दी और भारतीय भाषाएँ गतिमान हो रही हैं। यह हिन्दी का एक उज्ज्वल पक्ष है, परन्तु यह पर्याप्त नहीं है। जब तक बुनियादी शिक्षा और नौकरियों में लगे लोगों में हिन्दी को लेकर अनुराग और आत्मसम्मान का बोध नहीं जागेगा, तब तक हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ और सर्वमान्य होने का सपना सपना ही रहेगा।

हिन्दी केवल चौदह सितम्बर को ही याद न की जाय; बल्कि हमारी धमनियों में दौड़ती रहे ....!

तभी हम कह सकते हैं : हिन्दी हैं हम।

दस्तावेज

डॉ. राम मनोहर लोहिया

हिन्दी क्या है?

समाजवादी-चिन्तनधारा के अग्रदूत लोहिया साठ के दशक (1957) में चलने वाले 'अँग्रेजी हटाओ आन्दोलन' के सूत्रधार थे। इस आन्दोलन ने भारतीय राजनीति में बड़ा बदलाव किया। वे चाहते थे कि भारतीय भाषाओं का सम्मान करते हुए हिन्दी व्यापकता के साथ स्थापित हो और अँग्रेजी जाय।

उनके विचार से अँग्रेजी आम जनता की प्रजातन्त्र में शत-प्रतिशत भागीदारी के रास्ते का रोड़ा है, यह मजदूरों, किसानों और शारीरिक श्रम से जुड़े आम लोगों की भाषा नहीं है। वे कहते थे कि यदि सरकारी और सार्वजनिक काम ऐसी भाषा में चलाये जाएँ, जिसे देश के करोड़ों आदमी न समझ सकें, तो यह केवल एक प्रकार का जादू-टोना होगा। उनके अँग्रेजी के प्रबल विरोध और हिन्दी की दृढ़ स्थापना के खयाल को हिन्दी का वर्चस्व स्थापित करने की कोशिश के रूप में देखा गया। इसके लिए उन्हें बार-बार स्पष्टीकरण भी देना पड़ा कि अँग्रेजी हटाओ का अर्थ हिन्दी लाओ कदापि नहीं है। वे क्षेत्रीय भाषाओं की उन्नति और उनके प्रयोग की खुल कर वकालत करते थे। उनके अँग्रेजी हटाओ का अर्थ 'मातृभाषा लाओ' था।

परन्तु दुर्भाग्य से 'मातृभाषा आन्दोलन' के चरमकाल में ही वे 12 अक्टूबर 1967 को मात्र 57 वर्ष की आयु में हमसे असमय ही विदा ले ली। उनका वह सपना उनके बिना कहीं रास्ते में ही भटक गया।

हिन्दी की इस चर्चा में हमने उनके विचारों के संकलन से इस आलेख को अपने पाठकों के लिए बतौर दस्तावेज लिया है, ताकि डॉक्टर लोहिया की मंशा को समझा जा सके। डॉक्टर लोहिया यह आलेख उनकी किताब 'लोहिया के विचार' से साभार अक्षरशः